Golden Research Thoughts
Volume 2, Issue. 7, Jan. 2013
**ISSN:-2231-5063**

Available online at www.aygrt.net

ORIGINAL ARTICLE

GRT

# *साठोत्तर हिन्दी खण्डकाव्यों का स्वरूप उद्देश्य एवं अस्तित्ववाद*

*डॉ. ऋतु,*

अध्यक्ष (हिन्दी–विभाग)
एस. एम. एस. खालसा लबाणा गर्ल्ज कालेज (बराड़ा) अम्बाला।

*सारांश*

साठोत्तर हिन्दी खण्डकाव्यों का स्वरूप खण्डकाव्य के परम्परागत स्वरूप से पर्याप्त भिन्न है। वस्तु संयोजन, रस और चतुवर्ग फल प्राप्ति के पारम्परिक उद्देश्य के साथ–साथ अभिव्यंजना के स्तर पर भी साठोत्तर खण्डकाव्यों में नवीनता का समावेश हुआ है। इन खण्डकाव्यों के स्वरूप के बदलाव का मूल कारण परिवर्तित युग चेतना है। साठोत्ती युग–जीवन में उदात्तता मृत प्रायः है। मानव व्यक्तिगत विघटित और खण्डित है। अस्मिता की खोज में भटका मानव किंकर्त्तव्य विमूढ़ है।

***प्रस्तावना :–***

''विज्ञान की उत्तरोतर प्रगति, औद्योगीकरण और नगदीकरण की प्रवृति, साक्षरता का सर्वव्यापी प्रसार, जटिल अर्थव्यवस्था, स्थापित मानव– मूल्यों का पूर्नमूल्यांकन, महानगरीय बोध में लघुमानव के अकेलेपन, संत्राम व अवसाद की तीव्र अनुभूति, यांत्रिक सभ्यता की जटिलताओं से उत्पन्न जीवन–संघर्ष, घुटन और अनास्था, क्षण के प्रति आस्था, वर्तमान को भोगने की तीव्र लालसा, व्यक्तितववादी चेतना, पूर्वाग्रहों से मुक्त होने की कामना, अस्तित्व के प्रति चेतना, प्रखर बोधिता, सृष्टिबोध में परिवर्तन और मानवतावादी दृष्टिकोण ही वे विशिष्ट बिन्दु है, जिनके घटित होने से जनमानस की अभिव्यक्ति के उपकरणों (साहित्य रूपों) में भी परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव हुआ है। बदली हुई इस युग–चेतना को कवि साहित्य के परम्परागत रूपों में अभिव्यक्त करने में असमर्थ रहा है। यही कारण है कि शिल्प एवं भावबोध की दृष्टि से रूढ़ प्रबन्ध काव्य में आज आमूलचूल परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है।

कथावस्तु प्रबन्धकाव्य अथवा खण्डकाव्य का प्रधान तत्व है। परम्परागत प्रबन्धकाव्यों में कथावस्तु प्रख्यात व विस्तीर्णवपु होती है। कथा –योजना में अधिकारिक और प्रासंगिक, पताका और प्रकृरी आदि प्रख्यात व विस्तीर्णवस्तु होती है। इसके विपरीत नए प्रबन्धकाव्यों में छोटी सी घटना या एक दिन या दो दिन की घटना को लेकर वस्तु का विस्तार किया गया है। इस विस्तार में सर्वाधिक महत्तवपूर्ण स्थान मानसिक ऊहापोह और विचार के तर्क –विर्तक का रहा है।1 वस्तुतः नए कवि ने अनुभूति और भावचिन्तन को ही सत्य के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

युग सत्य का उद्घाटन भी आज की कविता का मूल स्वरहै। पौराणिक आख्यान और चरित्र युग–यथार्थ की अभिव्यक्ति में सर्वाधिक समर्थ हों क्योंकि पुराख्यानों में निहित अथ तत्व गाम्भीर्य प्रतीकात्मक और नयु स्वरूप के कारण प्रत्येक युग के चिन्तन और संवेदन से कहीं न कहीं अवश्य मेल खाता है। यदि ऐसा न हो तो पुराख्यानों के निरंतर चलते रहने का कोई आधार न रहे। यही कारण हे कि साठोत्तर खण्डकाव्यकारों ने पौराणिक आख्यानों को ही अपनी कृतियों की कथा वस्तु का आधार बनाया है। वैदिक साहित्य, उपनिषद, पुराण, रामायण और महाभारत आदि के कथानकों को लेकर लिखे गए साठोत्तर प्रबन्धकाव्यों में प्राचीन घटनाओं और कथा बिन्दुओं को युगीन आलोक में प्रस्तुत किया गया है।

साठोत्तर हिन्दी खण्डकाव्यों में धीरोदात्त नायक की अवधारणा भी लुप्त प्रायः है। परम्परागत खण्डकाव्यों के नायकों का स्वरूप अलौकिक और अति मानवीय रहा है। वे आदर्शो, मर्यादाओं और दैवी शक्तियों के पुंज रहे है। साठोत्तर खण्डकाव्यों के नायक असाधारण वीर और शक्तिशाली महापुरूष न होकर साधारण जन हैं।

परम्परागत रूप में रस काव्य के प्राण हैं। आचार्य आनन्दवर्धन तथा भोज ने रस को ही प्रबन्धकाव्य का आधार माना है। आचार्य विश्वनाथ महाकाव्य में श्रृंगार, वीर और शांत में किसी एक रस को अंगीरूप में तथा समस्त रसों को अंगरूप में स्वीकारते हैं। 1 पर आधुनिक, वैज्ञानिक और औद्योगिक युग की जटिलताओं के कारण साठोत्तर, खण्डकाव्यों में रस परिपाक का प्रश्न निरर्थक सा लगता है। आज मानव मन विभाजित है।

वस्तुतः आज व्यक्ति की भावकुता प्रखर बौद्धिकता में परिणत हो गई है। यांत्रिक सभ्यता से मानव मन में उत्पन्न तनाव, घुटन – टूटन, संत्रास और अकेलेपन के असहनीय बोझ के तले रस का सम्पूर्ण ढांचा चरमरा गया है। परिणाम स्वरूप आज के खण्डकाव्य भावबिन्दुओं और विचारबिन्दुओं का ही संस्पर्श करा पाते है और इन्हीं के माध्यम से साहित्य–स्रष्टा युग सत्य की अभिव्यक्ति करते हैं।

विकासवाद के सिद्धान्त के प्रति आज के खण्डकाव्यों में कुछ विशिष्ट नहीं मिलता। आज केवल यही कहा जा सकता है कि मानव बुद्धि का उत्तरोतर विकास हो रहा है। इसी कारण आज खण्डकाव्य अस्तित्ववाद से सर्वाधिक प्रभावित हुए है। अस्तित्वाद हिन्दी में अस्तित्व शब्द अंग्रेजी शब्द (एग्जिस्टेन्स), म्गपेजंदबमद्ध के पर्याय रूप से प्रचलित है अभिधेय रूप में अस्तित्व का अर्थ है – ''समय या अवकाश में स्थिति, होने का भा, विद्यमानता, सता।'' 2 उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्ध में डेनमार्क के सुप्रसिद्ध दर्शनिक और धर्म चिन्तक कीर्केगार्ड ने इस शब्द को एक नया

**Title:** *साठोत्तर हिन्दी खण्डकाव्यों का स्वरूप उद्देश्य एवं अस्तित्ववाद*
**Source:Golden Research Thoughts [2231-5063]** *डॉ. ऋतु,* **yr:2013 vol:2 iss:7**

दार्शनकि अर्थ प्रदान किया। कालान्तर में यह विचारधारा नीत्से, कार्ल स्पीयर्स, मार्शल, कामू, काफका तथा सात्रे के संरक्षण में निरंतर पुष्पित और पल्लवित होती रही।

अस्तित्ववाद एक ऐसी विचार पद्धति है, तो किवल व्यक्ति को सत्य मानती है और व्यक्ति के बाध्य दबाबों से मुक्त चिन्तन को प्राथमिकता और प्रधानता देती है। मनुष्य के मन में जो संघर्ष और द्वन्द्वफूटते हैं, जो वेदना वह सहता है, उसी से वह निर्णयों तक पहुंचता है। कीर्केगार्ड के अनुसार ''हमें अपने अस्तित्व की यथार्थता का बोध अपने भीतर होता है, सत्य हमेशा आत्मगत होता है, वस्तुगत नहीं।'' 1 रूबिचेक के अनुसार अस्तित्ववाद इस बात पर बल देता है कि दर्शन का संबन्ध व्यक्ति के अपने जीवन और अनूभूति के साथ, उस एतिहासिक स्थिति के साथ होना चाहिए जिससे वह अपने को पाता है और इसे अमूर्त चिन्तन में रूचि नहीं रखनी चाहिए। इसे तो जीवन – पद्धति से रूचि रखनी चाहिए। यह एक दर्शन होना चाहिए जिससे जीवित रहने की क्षमता हो। अस्तित्ववाद शब्द में इन सारी बातों का सार है। 2 अस्तित्ववाद जीवन–दर्शन के प्रभाव से साठोत्तर हिन्दी खण्डकाव्यों में मानव की स्वतन्त्रता के लिए छटपटाहट, जीवन की निरर्थकता, निराशावाद, क्षणवाद आदि अनेक प्रवृतियां दृष्टिगोचर होती हैं। निम्न कृतियों में अस्तित्ववाद चेतना का स्वर निम्न रूप से मुखरित है –––

पूर्ण स्वतन्त्रता की अदम्य चाह

व्यक्ति की यह प्रबल इच्छा है कि उसकी स्वतन्त्रता बनी रहे। व्यक्ति, परिवार, समाज, धर्म ईश्वर सभी व्यक्ति की स्वतन्त्रता को छीतने हैं। अतः अग्निलीक की सीता सभी लौकिक सम्बन्धों को तोड़कर पूर्ण स्वतन्त्रता भोगना चाहती है :–

'' अब मै स्वतन्त्र हूं मुक्त हूँ
अपने आप में पूर्ण हूँ
आप अपनी निर्देशिका आप अपनी कर्त्री
और आप अपनी भोक्ता हूँ।'' 3

***जीवन की निरर्थकता और विवशता का बोध :–***

साठोत्तर खण्डकाव्यों में अनेक ऐसे स्थल आए हैं जहां व्यक्ति की अत्यन्त निरीहता और निःसहायता का चित्रण हुआ है प्रवाद पर्व में राम का अस्तित्ववादी चिन्तन जीवन की निरर्थकता और व्यक्ति के अखण्ड पुरूषार्थ की विफलता को व्यंजित करता है। 1 अस्तित्ववाद के अनुसार जीवन अर्थहीन ही नहीं अपितु इस अभिशप्तता को भोगने की उसकी नियति है। जीवन की विवश स्वीकृति से व्यक्ति भाग नहीं सकता। इंगितों को विवश होकर ढोना मेनका की नियति है :–

''आज्ञाओं को दण्ड स्वीकारना
उसकी नियति है.....
अपने होने का कष्ट
उसको झेलना ही पड़ेगा।'' 2

***क्षण की महता का प्रतिपादन :–***

अस्तित्ववाद चिन्तन में काल के छोटे से छोटे अंश 'क्षण' की भी अपार महता स्वीकार की गई है। क्षण सम्बन्धी अवधारणा को स्पष्ट करते हुए डॉ0 रामगोपाल शर्मा दिनेश लिखते हैं – ''अतीत वर्तमान और भविष्य की परम्परा के प्रति श्रद्धालु बन कर नया कवि काल के अखण्ड प्रभाव में विश्वास नहीं करता। इसलिए वह किसी एक क्षण से अपनार अस्तित्व सिद्ध करना चाहता है।'' 3 अन्धा युग में वृद्ध याचक क्षण केउ असीम महत्तव को प्रतिपादित करते हुए कहता है :–

अब भी समय है दुर्योधन
समय अब भी है.....
हर क्षण इतिहास बदलने का क्षण होता है।'' 8

***संशय बोध :–***

संशय मानव की सहज वृति है। यह एक मनोविकार है। मानक हिन्दीकोष के अनुसार संशय का अर्थ और स्वरूप इस प्रकार है। '' पु. (सं. सम शी अच्)। पड़े रहना, लेटना, मन की वह स्थिति जिसमें किसी बात के सम्बन्ध में निराकरण या निश्चय नहीं होता और इस बात का रूप ठीक जानने या समझने के लिए मन में उत्कण्ठा या जिज्ञासा बनी रहती है। तथ्य या वास्तविकता तक पंहुचने के लिए मन की जिज्ञासा पूर्ण वृति, शक 1 आधुनिक युग की बौद्धिक गति शीलता के कारण संशय आधुनिक पूजा की प्रकृति बन गया है। संशय की एक रात में राम के समग्र व्यक्तित्व में संशय ही प्रतिच्छायित है। उनके अस्तित्व बोध से उनका संशय बोध अभिन्न है :–

''यदि मैं मात्र कर्म हूं
तो यह कर्म का संशय है
यदि मैं मात्र क्षण हूँ
तो यह क्षण का संशय है
यदि मैं मात्र घटना हूँ
तो यह घटना का संशय है।'' 2

***निष्कर्ष :–***

साठोत्तर खण्डकाव्यों में यद्यपि खण्डकाव्यके परम्परागत अभिलक्षणों का पूर्णतः निर्वाह नहीं हुआ है पर खण्डकाव्यों के प्राचीन सांचे

में ही संवेदन और शिल्प के स्तर पर किंचित परिवर्तन कर इन्हें युगानुरूप रूप प्रदान किया है। पर इससे इनके मूल खण्डकाव्यत्व की कोई क्षति नहीं हुई बल्कि इनका खण्डकाव्यत्व और अधिक भास्वर और प्रभावी हो गया है। साठोत्तर युग के खण्डकाव्यों में अपमान,आपमान–बोध और इसके सम्बन्ध में अन्य मनोविकारों कोध, आवेश, भय, कुण्ठा आदि की सशक्त अभि व्यक्ति हुई है।

धर्म और दर्शन को मानववादी स्वरूप प्रदान किया गया है। उन्हें जटिल कर्मकाण्डीय कियाओं और गुह्य साधनाओं से दूर एक ऐसा मानवीय स्वरूप किया गया है जो मानवमात्र के लिए सहज स्वीकार्य है। जो मानव की आत्मा का संस्कार और परिष्कार करने वाला है।

1.डॉ. प्रेमचन्द मित्तल : नवीन भावबोध के प्रबन्धकाव्यों में सांस्कृतिक चेतना, पृष्ठ–2
1.डॉ. अश्वनी पराशर ' हिन्दी नई कविता : मिथक काव्य पृष्ठ : 186
2.डॉ. हरीश चन्द्र वर्मा : नई कविता नाट्य काव्य पृष्ठ : 63
1.साहित्य दर्पण : परिच्छेद 6 कारिका 317
2.रामचन्द्र वर्मा मानक हिन्दी कोष, पृष्ठ : 229
1.डॉ. रामविलास शर्मा : नई कविता और अस्तित्ववाद, पृष्ठ 92,
2.पालरूबिचेक : अस्तित्ववाद : पक्ष और विपक्ष पृष्ठ 119, डॉ0 उमाकान्त गुप्त,नई कविता के प्रबन्धकाव्, शिल्प और जीवन–दर्शन, पृष्ठ : 279
3.नरेश मेहता : प्रवाद पर्व, पृष्ठ : 5–6
1.नरेश मेहतास ' प्रवाद पर्व, पृष्ठः 5–6
2.डॉ. विनय : एक पुरूष और पृष्ठ. 65
3.आलोचना : अप्रैल 1955 पृष्ठ, 34
4.धर्मवीर भारती : अन्धायुग, पृष्ठ 44,
1.रामचन्द्र वर्मा, पृष्ठ – 28
2.नरेश मेहता : संशय की एक रात, पृष्ठ – 51